

दीनदयाल उपाध्याय जी के उपन्यासों में एकात्म मानवदर्शन

श्री ब्रह्मा नन्द मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर, डायरेक्टरेट ऑफ डिस्टेंस एजुकेशन,
महात्मा गाँधी, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी के उपन्यास जगद्गुरु शंकराचार्य में 'एकात्म मानवदर्शन' का पूर्ण प्रतिबिम्बन होता है। महर्षि अरविन्द ने कहा था 'भारत को अपने भीतर से समूचे विश्व के लिये भविष्य के पथ का निर्माण करना होगा। एक शाश्वत पंथ जिसमें पंथों, विज्ञान, दर्शन आदि का समावेश होगा और जो मानवता को एक आत्मा में बांधने का काम करेगा।' आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने सम्भवतः महर्षि के इन्हीं उद्गारों को आत्मसात करते हुये विश्व के समक्ष 'एकात्म मानव दर्शन' प्रस्तुत किया था।

"एकात्म-मानव दर्शन' परिपूर्ण मानव का विचार करता है। दीनदयाल जी का विचार था कि मनुष्य का टुकड़ों में विचार नहीं किया जाना चाहिए। टुकड़ों में विचार करना न तो सम्पूर्ण विश्लेषण कर सकता है और न ही समस्या का समाधान प्रस्तुत कर सकता है। वस्तुतः मनुष्य तन, मन बुद्धि तथा आत्मा का समुच्चय है। एकात्म-मानववादी व्यवस्था का प्रतिपादन करते हुये उन्होंने कहा था कि 'मनुष्य पशु नहीं है कि केवल पेट भर जाने से वह सुखी और संतुष्ट हो जायेगा। उसकी जीवन यात्रा 'पेट' से आगे 'परमात्मा' तक जाती है। उसके मन, उसकी बुद्धि और उसकी आत्मा का भी कुछ तकाजा है। इस तकाजे को ध्यान में रखे बिना बनाई गई प्रत्येक व्यवस्था अल्पकालिक ही नहीं, घातक भी होगी।"।

"सादा जीवन उच्च विचारों की प्रतिमूर्ति पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी प्रखर राष्ट्रवादी चिंतक, भारतीय संस्कृति के उन्नयाक, कुशल संगठनकर्ता, संवेदनशील समाज सेवी, दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ, तत्त्वद्रष्टा और प्रबुद्ध साहित्यकार थे। अपने ऋषिकल्प जीवन चिन्तन, कथन एवं आचरण से उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को एकात्म मानवाद का संदेश दिया है। विश्व कल्याण का यह भाव भारतीय संस्कृति का मूल तत्व रहा है। भारतीय चिन्तन धारा का यह मूल सन्देश जो प्राचीन काल में भारतीय राजनीति का भी अनिवार्य अंग था, पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी इससे आधुनिक राजनीति को भी अनुस्यूत करना चाहते थे। आज उदारीकरण भूमण्डलीकरण, मुक्त व्यापार और बाजारवाद के दौर में जब पूरा समाज उपभोक्तावाद की अंधी दौड़ में शामिल है तब उपाध्याय जी के विचार और भी प्रासंगिक लगते हैं।"

"उपाध्याय जी का मानना था कि देश को एकता अखंडता के सूत्र में बांधे रखना है और अलगाववादी शक्तियों पर अंकुश लगाए रखना है तो समग्र राष्ट्र में सांस्कृतिक एकीकरण चेतना की जरूरत है क्योंकि अनेक मत बंद आचार विचार रहन-सहन और के बावजूद देश में अंतर्निहित सांस्कृतिक एकीकरण जिसे हम भारतीय संस्कृति या विभिन्न रूप में हिंदू

संस्कृति (यहाँ धर्म के अर्थ में नहीं) कह सकते हैं नहीं सदियों से इस देश को एकता के सूत्र में आबद्ध रखा है। वह संस्कृति को देश की आत्मा मानते थे। वह कहते थे कि देश भक्ति की भावना स्वभाव से आती है किसी दबाव या परिस्थितियों के कारण नहीं। देश की एकता को मजबूत करने के लिए उन्होंने भारत की राजभाषा हिंदी और देवनागरी लिपि को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए तत्कालीन सरकार पर दबाव बनाया था।”

पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी ने सन् 1946 में बालोपयोगी उपन्यास ‘सम्राट् चंद्रगुप्त’ लिखा था। वह बहुत लोकप्रिय हुआ, तब श्री भाऊराव देवरस ने उन्हें युवकोपयोगी उपन्यास लिखने का आग्रह किया। अतः 1947 में ही लगभग 31 वर्ष की आयु में आपने दूसरा उपन्यास ‘जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य’ लिखा, जो निम्नलिखित शीर्षकों में उपनिबद्ध है:

मनोगत

1. अवतरण
2. बाल्यकाल
3. आकांक्षा ।
4. ध्येय-पथ
5. गुरु के सान्निध्य में
6. शिक्षा माया और संसार
7. बंधन से मुक्ति
8. जनजीवन का साक्षात्कार
9. दिग्विजय यात्रा
10. प्रयाग में
11. कुमारिल भट्ट
12. मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ
13. भारती का समाधान
14. विविधता में एकता
15. राष्ट्र, धर्म और संप्रदाय
16. हिमालय की चोटियों पर
17. ध्येय-सिद्धि
18. महत् तत्व में विलीन

“जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य उपन्यास का मनोगत ही पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी के एकात्म मानवदर्शन’ को उपस्थापित करने में समर्थ है – ‘हमारे राष्ट्र निर्माताओं में जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य का स्थान बहुत ऊँचा है। कई विद्वानों ने तो उन्हें आधुनिक हिंदू धर्म का जनक ही कहा है। जनसाधारण स्वामी शंकराचार्य को बौद्ध धर्म के विनाशक तथा हिंदू धर्म के संस्थापक के रूप में देखता है तो कई विद्वानों को उनमें ‘प्रच्छन्न बौद्ध’ दृष्टिगोचर होता है। सत्यांश दोनों ही चित्रों के पीछे है, क्योंकि उनके युग की संपूर्ण

सहस्राब्दी का इतिहास केंद्रापगामी बौद्ध धर्म तथा केंद्राभिमुखी हिंदू धर्म के पारस्परिक-संघर्ष तथा समन्वय का इतिहास है। जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य का जन्म उस समय में हुआ था, जब बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था। धर्म के नाम पर अनाचार फैल रहा था। बौद्ध धर्म को राज्याश्रय देने वाली केंद्रीय सत्ता निर्बल हो रही थी। अनेक वर्षों तक राज्याश्रय का उपभोक्ता होने के परिणामास्वरूप सत्ता की चाट बौद्धों को लग चुकी थी। वे सत्ता को हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। विरोधियों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया।

ढलती हुई बौद्ध –सत्ता के उन्नायक बनकर उन्होंने भारत में प्रवेश किया। भारतीय बौद्धों ने सत्ता के लोभ में अपने-पराये का विवेक खोकर उनका सत्कार किया। उनके साथ सब प्रकार का सहयोग किया। प्रखर राष्ट्रीयता का पोषक हिंदू समाज इसे सहन न कर सका और कुमारिल भट्ट द्वारा प्रज्वलित चिनगारी शंकराचार्य के रूप में दावानल बनकर प्रकट हुई। इस दावानल में हिंदू धर्म के अंदर-बाहर चारों ओर उगने वाले झाड़-झंखाड़ को भस्मसात् कर दिया। इस अग्नि में तपकर हिंदू धर्म पहले से अधिक तेजस्वी बनकर कुंदन के रूप में निखर आया। धर्म की रक्षा हुई, देश की रक्षा हुई। स्वामी शंकराचार्य ने बुद्ध को हिंदू धर्म के अवतारों में स्थान देकर बौद्धों की केंद्रापगामी दृष्टि फेर दी। फिर घर-घर में देश का गुंजन प्रारंभ हो गया। शंकराचार्य ने इतना ही नहीं तो समस्त हिंदू-राष्ट्र को एक सूत्र में पिराने एवं उसे संगठित करने का प्रयास किया। देश के चारों कोनों पर चार धामों के प्रति श्रद्धा केंद्रित करते हुए उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष की, मातृ-भूमि की मूर्ति जन-जन के हृदय पर अंकित कर दी। पंचायतन का पूजन प्रारंभ कर विभिन्न संप्रदायों को एक-दूसरे के आराध्य देवी के प्रति केवल सहिष्णुता का भाव ही नहीं तो सभी देवताओं के प्रति अपने इष्टदेव के माध्यम से वही श्रद्धा एवं आदर का भाव व्यक्त करने को प्रेरित किया, इसके अनुसार प्रत्येक पाँचों देवताओं विष्णु, शिव – शाक्ति, गणपति और सूर्य की पूजा करता हैं।

आपनी श्रद्धा के अनुसार अपने इष्टदेव को बीच में तथा चारों ओर अन्य चार देवताओं को रखकर पूजन करने की छूट है। चार धामों के सामान ही उन्होंने समाज को धर्म मार्ग पर नियंत्रित एवं अनुशासित रखने के लिए चार शंकराचार्यों की अध्यक्षता में भारत के चारों कोनों में चार मठ स्थापित किए।

जगद्गुरु शंकराचार्य उपन्यास की विषयवस्तु अत्यन्त रोचक एवं गतिशील है। यह हिंदू धर्म एवं संस्कारों को समाज में दृढ़तापूर्वक स्थापित करने की भावना से पूर्णतः ओतप्रोत है। इस उपन्यास के 'अवतरण' प्रथम अध्याय में पिता शिवगुरु तथा माता आर्यबा द्वारा कठिन तपश्चर्या के उपरान्त जगद्गुरु शंकराचार्य के अवतरण का वर्णन है। यह ब्राह्मण दंपती अपने निःसन्तान जीवन के कष्ट को दूर करने के लिये भगवान शंकर की उपासना में एकाग्रतापूर्वक संलग्न हो जाते हैं। शिवगुरु तथा आर्यबा की तपश्चर्या का आलङ्कारिक वर्णन करते हुए पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी लिखते हैं:

‘इस कठिन तपश्चर्या में शिवगुरु ने उसका साथ दिया। उनकी आराधना निरंतर चलती रही। उन्हें अपनी सुधबुध नहीं थी। रात को भगवान् का भजन करते-करते न मालूम कब निद्रा देवी उन्हें अपने अंक में छिपा लेती थी और न मालूम कब भगवान बुद्ध के गृहत्याग की भांति चुपके से उनको छोड़कर चली जाती। प्रातः काल उषा को साथ लेकर अंशुमाली जगत् को जागते हुए अपने करों से उनका द्वारा खटखटाते तो उन्हें पहले की जाग्रत तथा तपमग्न पाते। उषा भगवान् मरीचिमाली का साथ छोड़कर इस दंपती की सेवा करने में अपना अहोभाग्य समझती। उनका आनन तेजपुंज से परिवेष्टित हो चमक उठता। दोपहर को तप्तांशु उनके साथ तप करने की होड़ लगाते, परंतु शिवगुरु और आर्यबा के तप के सामने उनका तप फीका पड़ जाता, हारकर लज्जा से लाल-मुँह किए अंतरिक्ष की ओट में भाग जाते। रात्रि का चंद्रोदय होता, मानो भगवान् शशिभाल ही कृष्णा बाघंबर ओढ़े भक्तों की रक्षा को आए हैं। रात भर भगवती गिरिजा के साथ-साथ अपने भक्त की रक्षा करते। उनकी कठिन तपश्चर्या देखकर गिरीश-नंदिनी आँसू बहाती तथा भगवान् शिव अट्टहास कर उठते। उमा के आंसू ओसकण बनकर गिर पड़ते तथा भगवान का हास्य पूर्वाकाश पर छा जाता। कई दिनों तक यही क्रम चलता रहा। भगवान चंद्रभाल के चंद्र की कलाएँ घटने लगीं, कला-रहित भोलानाथ की कल्पना ने ही उनकी विकल्प कर दिया। उन्हें इस ब्राह्मण दंपती की तपस्या के सामने झुकना पड़ा। भगवान शंकर के वरदान स्वरूप वैशाख शुक्ल दशमी को आर्यबा पुत्ररत्न को जन्म देती हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी शंकराचार्यजी की तुलना भागीरथी से करते हैं ;

भगवान शंकर की तपश्चर्या करके भगीरथ एक दिन भारत में गंगा को लाए, जिसने भगीरथ के समस्त पूर्वजों का उद्धार किया तथा जो आज तक भारत के लिए सुख-संपत्ति की खान हुई है। उसने (जगद्गुरु शंकराचार्य ने) इस धर्म का उद्धार करके हमारी सभ्यता तथा राष्ट्रीयता को संपन्न किया।’

हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए वेदविरोधियों एवं वाममार्गियों का पण्डितजी मुखर विरोध करते हैं। अल्प आयु में ही पडोसी बालक हरिदेव को गुरुकुल भेजने का विरोध करने पर शिवगुरु एवं आर्यबा को हरिदेव के पिता सोमदेव समझाते हैं— आजकल तो जिनती छोटी आयु में हो सके, उतने में ही बालक को गुरु के पास भेज देना चाहिए। चारों ओर नास्तिकवादी बौद्धों तथा वाममार्गियों का प्रभाव इतना बढ़ता जा रहा है। की यदि यदि छोटी आयु में ही वैदिक धर्म के भले संस्कार न पड़े तो कुमार्ग पर बह जाने का डर रहता है। इसीप्रकार — हिन्दू धर्म की महानता का ज्ञान रखने वाले शिवगुरु ने भावी बालक के जन्म के पूर्व से समस्त संस्कार यथाविधि किए। वह जानता था कि मनुष्य का जीवन संस्कारों पर अवलम्बित है। उसने देश और समाज के लिए एक सर्वज्ञ पुत्र की कामना की थी।

पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी ने जगद्गुरु शंकराचार्य उपन्यास के ‘बाल्यकाल’ नामक द्वितीय अध्याय में शिशु शंकर के बाल्यकाल का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। माता-पिता

द्वारा अपने बालक की प्रथम अब्दपूर्ति (वर्षगाँठ) मनाये जाने पर शंकर को बड़े-बूढ़ों ने अमर होने का आशीर्वाद दिया। पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी की अभिव्यक्ति यहाँ दर्शनीय है— 'सचमुच शंकर आज अमर है। शरीर से तो संसार में कोई अमर नहीं रहता। अमर तो वही है, जिसका यश अमर है। जब तक संसार में हिन्दू जाति जीवित है, तब तक शंकर का नाम जीवित है और हिंदू जाति को तो शंकर ने समन्वय की संजीवनी मिलाकर अमर ही कर दिया। बालक शंकर विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न थे'। अतः तीन वर्ष की आयु पूर्ण होने तक ही उनका पट्टी पूजन करवा दिया गया था। बालक शंकर ने अक्षराभ्यास प्रारंभ कर दिया। वे एक 'श्रुतिधर' थे अर्थात् जिस बात को एक बार सुनते थे उसे उसीप्रकार अपने स्मृति पटल पर अंकित कर लेते थे। पाँच वर्ष आयु तक बालक शंकर ने समस्त लौकिक साहित्य पढ़ लिया। तथा वेद पढ़ने के लिये तैयार हो गये। पण्डित दीनदयाल शंकरचार्य के गुरुकुल जीवन का भी मर्मस्पर्शी चित्रण करते हैं। बालक शंकर को वि॥ और बुद्धि के साथ की श्रद्धा और ममत्व भी प्राप्त थे। इसीलिए कालटी तथा इसके आस-पास के सभी लोग उन्हें प्राणपण से चाहते थे।

गुरुकुल के वर्णन प्रसंग में पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी ने भारतीय शिक्षा प्रणाली के महत्व को भी दृढ़तापूर्वक उपस्थापित किया है। 'गुरुकुलों की शिक्षा—पद्धति आज से भिन्न थी। जब राष्ट्र स्वतंत्र होता है तब शिक्षा उसके वास्तविक उद्देश्यों के अनुसार बालक की सुप्त शक्तियों का विकास करके समाज का चौतन्त्रपूर्ण घटक तथा योग्य नागरिक बनने के लिए ही दी जाती है। उस शिक्षा में समाज से संबंध—विच्छेद नहीं होता, अपितु पग—पग पर समाज का हमारे ऊपर कितना ऋण है, उसके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, यह याद दिलाई जाती है। अतः हमारे यहाँ पद्धति थी कि गुरुकुल में रहने वाला प्रत्येक विद्यार्थी, चाहे वह राजा का पुत्र हो अथवा रंक का गाँव में जाकर भिक्षा मांग कर लाती था। इस प्रकार के बटु में गाँव के लोगों के प्रति कितना आदर, कितनी विनय, कितनी श्रद्धा तथा कितना अपनत्व होगा? 'ब्रह्मचारी' की 'भिक्षां देहि' की आवाज सुनते ही जब गृहिणी दौड़कर भिक्षा देने के लिए आती हों, तब किसका मस्तक कृतज्ञता के भार से न झुक जाएगा? उसके जीवन की चिंता करने वालों को सुखी बनाने की कौन जीवन भर प्राणपण से चेष्टा नहीं करेगा? विद्यार्थी वर्ग समाज से अलग वर्ग है। वह भाव उसके मन में कैसे आएगा?

परतंत्र राष्ट्र के विद्यार्थियों के समान अपने समाज में अलग वर्ग बनाने वाले, समाज से भिन्न हो, उसके प्रति अश्रद्धा रखने वाले, परकीय भावनाओं से ओत-प्रोत विनय रहित, मानसिक दासता से जकड़े हुए विद्यार्थी उस समय नहीं होते थे। अपने मस्तिष्क को विदेशियों के हाथ वक रखने के कारण, जिनकी विचारशक्ति का दिवाला निकल गया है, स्वार्थी तथा आदर्शहीन जीवन ने जिनके हृदय के रस को शुष्क कर दिया है, जिनकी भावनाओं को काठ मार गया है तथा वेदना कुंठित हो गई है, आलस्य का साम्राज्य देखकर जहाँ से पुरुषार्थ, उद्योग तथा कर्मण्यता कूच गए हैं, ऐसे विचारशून्य, भावनाहीन, कर्म—रहित विद्यार्थी उस समय नहीं होते थे।'

पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी धार्मिक मर्यादाओं के अवसरोचित निर्वाह के समर्थक थे। शंकराचार्य द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना ही संन्यास ग्रहण कर लेने का समर्थन करते हुए पण्डित जी कहते हैं – 'व्यवस्था और नियम समाज की रचना के लिए होते हैं। महत्त्व को नहीं अपितु समाज के संगठन और जीवन को है। यदि समाज के जीवन के लिए मर्यादा स्थापित करने की आवश्यकता हो तो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के समान मर्यादाएँ बाँधी जाती हैं और यदि मर्यादा उल्लंघन और आवश्यकता हो तो योगेश्वर कृष्ण की भाँति मर्यादाएँ तोड़ी भी जाती है। उल्लंघन और पालन दोनों के पीछे एक ही भावना है, समाज के संगठन की एक ही इच्छा है, समाज का अस्तित्व बनाए रखने की। व्यवस्था और नियम साध्य नहीं, साधन हैं। साधन का उपयोग तब तक है, जब वह साध्य को प्राप्त करने में सहायक हो। केवल लकीर पीटने से क्या लाभ? पण्डित दीनदयाल उपाध्यायजी की दृष्टि में संन्यास भी समाज के कल्याण के लिए ही स्वीकार्य हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय— (भाग एक), संपादक— डॉ. महेश चंद्र शर्मा, प्रकाशक—प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 25 सितम्बर 2016, पुनर्मुद्रण— जनवरी 2017 पृष्ठ— 121 से 207
2. ऋतम्भरा 2015–16 (सांस्कृति एवं शैक्षिक उन्नयन में प्रदेश का अग्रणी महाविद्यालय— विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कालेज, कानपुर की वार्षिक पत्रिका) में प्रकाशित निबंध— "दीनदयालजी और उनका चिन्तन" लेखक— डॉ. श्याम बाबू गुप्त, निदेशक— दीनदयाल शोध केन्द्र, छात्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर के सौजन्य से, पृष्ठ – 71 से 73
3. ऋतम्भरा 2015–16 (सांस्कृति एवं शैक्षिक उन्नयन में प्रदेश का अग्रणी महाविद्यालय— विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कालेज, कानपुर की वार्षिक पत्रिका) में प्रकाशित निबंध— "दीनदयालजी और उनका चिन्तन" लेखक— डॉ. श्याम बाबू गुप्त, निदेशक— दीनदयाल शोध केन्द्र, छात्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर के सौजन्य से, – पृष्ठ 72
4. ऋतम्भरा 2015–16 (सांस्कृति एवं शैक्षिक उन्नयन में प्रदेश का अग्रणी महाविद्यालय— विक्रमाजीत सिंह कालेज, कानपुर की वार्षिक पत्रिका) में प्रकाशित निबंध— 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद: दीनदयाल उपाध्याय लेखक— डॉ. राकेश शुक्ल, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, तेज, कानपुर के सौजन्य से, पृष्ठ – 74 से 76